

पाठ—11

घूम रहा है कैसा चक्र

मूल पाठ :—

घूम रहा है कैसा चक्र ।
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र ।
पिसो, पड़े हो इसमें जबतक,
क्या अन्तर आया है अब तक?
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र?
घूम रहा है कैसा चक्र ।

गौतम बुद्ध की उस मनोभावना का चित्रण हुआ है जो संसार के कल्याण के लिए घर छोड़ने से पहले उनके मन में आ रही थी। सिद्धार्थ कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र थे। राजमहल में संसार के समस्त मुखों के साधन उपलब्ध थे किन्तु जब से सिद्धार्थ ने रोग, जरा और मृत्यु के बारे में जाना था तब से उनका मन सदा चिन्तित रहा करता था। उनकी यह चिन्ता थी कि मनुष्य जन्म, जरा और मृत्यु के चक्र में फँसा हुआ है। सृष्टि के पर्दे के पीछे कोई ऐसा चक्र चल रहा है जो मनुष्य के जीवन से नवनीत के समान सच्चे सुख को छीन लेता है और छाछ के समान निस्सार तत्व छोड़ देता है।

संसार के इस चक्र से प्राणी कैसे मुक्त हो? यह प्रश्न उसके हृदय में बार—बार उत्पन्न हो रहा था। संसार के इस कुटिल चक्र से कोई आज तक बच नहीं पाया है। जन्म—मरण के दुश्चक्र में मनुष्य को सदा पिसना पड़ता है। अब तक इस व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। किन्तु प्रश्न यह है कि मानव कब

तक जन्म मरण के इस चक्र को सहता रहेगा। जीवन, जरा, मृत्यु सांसारिक मोह—माया के रूप में प्राणी की जो पीड़ा है, उसने संसार की गति को चक्र बना दिया है। प्राणी संसार की इस टेढ़ी चाल को कब तक सहता रहेगा?

कैसे परित्राण हम पावें
किन देवों को रोवें—गावें
पहले अपना कुशल मनावें
वे सारे सुर—शक्र।
घूम रहा है कैसा चक्र।

कवि ने सिद्धार्थ की उस चिंतनधारा को उपस्थित किया है, जो मानव को सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाने हेतु उनके मन में उत्पन्न होती थी। जन्म, जरा और मृत्यु ये तीन स्थितियाँ मनुष्य के जीवन में उत्पन्न होती हैं। जो जन्म लेता है उसका मरना निश्चित है। इसी प्रकार अन्य भौतिक वस्तुएँ एक समय सीमा के पश्चात नष्ट हो जाती हैं। जन्म और मृत्यु, निर्माण और नाश उससे मुक्ति का क्या उपाय है? इस नश्वर संसार में सांसारिक मोह माया के रूप में जो कष्ट हैं उनसे कैसे छुटकारा मिले? क्या इसके लिए देवताओं की आराधना की जाय? संकट काल में प्राणी दवी देवताओं का स्मरण करते हैं, किन्तु सिद्धार्थ का यह मानना है कि इन्द्र आदि देवता तो स्वयं अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए परेशान हैं।

बुद्ध संसार के दुखों को दूर करने के लिए ईश्वर की आराधना को भी भ्रम मानते थे। वे ऐसा समझते थे कि देवतागण अपनी कुशलता के लिए स्वयं प्रयत्नशील रहते हैं, ऐसी स्थिति में प्राणी मात्र को पीड़ा मुक्त करने हेतु किसी अन्य मार्ग की आलोचना की थी। वे इनमें विश्वास न रखते थे। मूर्ति पूजा बहुदेवतावाद आदि को वे व्यर्थ मानते थे।

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ ?

मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ।

तब है, जब वे दाँत उखाड़ूँ ?

रह भवसागर-नक्र !

घूम रहा है कैसा चक्र !

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सिद्धार्थ की चिन्ताधारा के मौलिक स्वरूप का चित्रण किया है। सिद्धार्थ ने मानव के सांसारिक आवागमन रूपी कष्ट को दूर करने का बाह्य जगत में कोई उपाय न देखकर आत्मशक्ति को जागृत करने पर बल दिया। सिद्धार्थ का मानना था कि कोई भी बाह्य उपचार इस कार्य के लिए उचित नहीं है। संसार में रहकर सांसारिक मोह माया से अलग होना कठिन और असहाय है। यदि सांसारिक दुखों से मुक्ति पानी है तो स्वयं को मोह माया के बन्धनों से खींच कर आत्मकेन्द्रित करना होगा। ज्ञान, योग और आत्मशक्ति से संसार सागर में पड़े आनन्द तत्व को निगल जाने वाले घड़ियाल के दाँत तोड़ने होंगे। अर्थात् भौतिक सुख के प्रति आसक्ति मगरमच्छ के समान है जो जीवन के वास्तविक आनन्द को निगल जाता है। उस मगरमच्छ को आत्मबल के द्वारा परास्त करना होगा। दूसरों शब्दों में अपने भीतर ही सांसारिक दुखों से मुक्ति की राह ढूँढ़नी होगी, जिसके लिए एकाग्रता और एकांत चिंतन आवश्यक है।

सिद्धार्थ की चिन्ता संसार की परम्परागत चिन्ताधारा से अलग थी। वे सांसारिक कष्टों को दूर करना चाहते थे, जीवन और मरण के चक्र से मानव को त्राण दिलाना चाहते थे, किन्तु इसके लिए न वे किसी देवता की आराधना करना चाहते थे और न किसी अन्य बाह्य साधन का उपयोग ही करना चाहते थे। उनका मानना था कि अपनी साधना के बल पर सांसारिक माया से स्वयं को खींच कर अलग कर लेने से मनुष्य इस कष्ट से छुटकारा पा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त